वैदिक काल से आधुनिक काल तक संगीत की विकास यात्रा का विश्लेषणात्मक अध्ययनः

(विशेषतः स्वर एवं संगीत शैली के संदर्भ में)

Dr. Shikha Samaiya
IUC Associate (2025)
Dean, Arts Faculty
Sarvajanik University
Surat,Gujrat

वैदिक काल से आधुनिक काल तक संगीत की विकास यात्रा का विश्लेषणात्मक अध्ययनः

(विशेषतः स्वर एवं संगीत शैली के संदर्भ में)

संगीत जहाँ एक ओर मानव के मनोरंजन का साधन है वहीं दूसरी ओर मानव के आत्मसाक्षात्कार द्वारा ईश्वर तक पहुँचने का श्रेष्ठ मार्ग है। सामगान के पुष्ट प्रमाण यह ज्ञात कराते हैं कि पूर्वजों ने संगीत की इस अनन्य क्षमता को वैदिक काल में ही परख लिया था, भारतीय संगीत की लोकरन्जक, भवभंजक और अन्य उपयोगी क्षमता, विविध प्रकार की हैं। विभिन्न पर्वों, उत्सवों एवं मांगलिक कार्यों इत्यादि में संगीत की अविरल धारा हम सभी को सर्वत्र एवं समान रूप से रससिक्त करती रहती है।

संगीत की व्युत्पत्ति सम+गीत, इस तरह से मानी जाती है। 'सम' उपसर्ग सम्पूर्णता का बोधक है, एवं गीत तभी प्रभावी होता है, जब उसके साथ उसके अन्य अंग वादन एवं नृत्य का भी समावेश होता है।

॥'गीतं वाद्य च नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते'॥[1] .

अर्थात् गीत, वाद्य एवं नृत्य ये तीनों कलाएँ एक दूसरे के पूरक हैं एवं तीनों के मिश्रण से ही संगीत की उत्पत्ति होती है। स्वतंत्र होते हुए भी गान के अधीन वादन तथा वादन के अधीन नृत्य है।

सर्वप्रथम स्वर की विकास यात्रा पर आपका ध्यान केंद्रित करना चाहती हूँ।

स्वर संगीत का एक प्राण घटक है,

'स्वयं राजते इति स्वराः'[2]

स्वर को 'राज्री' धातु लगाकर - जिसका अर्थ है चमकता। अर्थात् जो स्वयं प्रकाशित होते हैं, उन्हें 'स्वर' कहते हैं। दरअसल यहाँ प्रकाश का अर्थ, ज्ञान का आलोक है।स्वर से जुड़ा हुआ महत्वपूर्ण घटक है-'नाद'

'स्वयं रौति इति नादः'

अर्थात् जो आवाज़ करते हैं। उसे नाद कहते हैं। इस तरह जो श्रवणीय है, वह आहत नाद, और जो श्रवणीय नहीं है, वे अनाहत नाद कहलाते हैं। एवं वे आहत नाद जो श्रवणीय है, वही 'स्वर' की श्रेणी में आते हैं। अगर गहराई से देखें, तो श्रवणीय की श्रेणी में कई तरह के स्वर हो सकते हैं, जैसे- ऊँचा, नीचा, कठोर, मृदु आदि। परंतु संगीत की श्रेणी में केवल 'मृदु' अर्थात् स्वर के मधुर रूप को ही शामिल किया गया है।

अब यह जानना आवश्यक है कि स्वर कैसे प्रयोग में आया? इसका प्रमाण हमें वेदों में मिलता है। सृष्टि की रचना के पश्चात् मनुष्य ने जब विविध प्रकार की पशु, पक्षी, प्राणी, प्रकृति के विविध रूप की ध्वनियों को सुना, तब उसे पहचानना शुरू किया।

दूसरी तरफ उस समय समानान्तर रूप से 3 तरह से जब भाषा का विकास हुआ,

1) पद्यात्मक रूप से
2) गद्यात्मक रूप से
3) गानात्मक रूप से

पद्यात्मक मंत्रों को **'ऋक्'** कहा गया, गद्यात्मक मंत्रों को **'यजुश'** कहा गया, तथा गानात्मक मंत्रों को **'साम'** कहा गया। परन्तु सबके मूल में स्वर ही स्थित था, इसी कारण उसे 'मंत्र' कहा गया।

वैदिक युग में प्रचलित प्राचीनतम गायन के स्वरूप का अनुमान सामगान के आधार पर किया जा सकता हैं। वेद परंपरा को उसके परिशुद्ध एवं अखंडित रूप में स्थापित करने का कार्य, वैदिक शिक्षा की मौखिक परंपरा की बदौलत ही संभव हो सका। वेदों को 'श्रुति' कहा जाता था। वेद ज्ञान को आत्मसात करने के लिए शिष्यगण, गुरुओं से श्रवण करके (श्रुत करके) उसका यथामूल अनुकरण किया करते थे।

साम शब्द में मूलतः 'सा और अम' दो घटक है। सा का अर्थ है ऋचा, और अम का अर्थ है संगीत के षडज, रिषभ इत्यादि स्वर। अर्थात् स्वरों की योजना द्वारा निष्पन्न होने वाला ऋचाओं का गेय रूप। सामगान में, ऋग्वेद में संग्रहित छंदोबद्ध ऋचाओं (मंत्र) का पठन, यज्ञों में देवताओं की स्तुति करते हुए गाया जाता है।

यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है, कि वैदिक मंत्र साहित्य में दो तरह के स्वर का वर्णन हमें मिलता है-

1. 'अर्थ तत्व' पर आधारित अर्थात् अर्थ को निर्धारित करने वाले स्वर
2. 'स्वर तत्व' पर आधारित अर्थात् अभिव्यक्ति को निर्धारित करने वाले स्वर

दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, जब तक इन मंत्रों के अर्थों को अभिव्यक्ति नहीं मिलेगी, तब तक दूसरे के द्वारा ग्राहय नहीं हो पाएगा।

- पहला तत्व 'अर्थ तत्व' अर्थात् 'बलाघात'। अर्थात एक वर्ण पर कितना बल (stress) देना है, कैसे उच्चारण करना है, कहाँ संधि अक्षर है। इन बिंदुओं का विचार करके उस स्वर पर बल देना या बलाघात करना। ऐसा न करने से उसका अर्थ अलग हो जाएगा।

बलाघात के स्वर तीन तरह के होते हैं-

क) उदात्त ख) अनुदात्त ग) स्वरित

पाणिनी के अनुसार - 'उदात्त' अर्थात उच्च स्वर, 'अनुदात्त' अर्थात नीचा स्वर, 'स्वरित' अर्थात बीच का स्वर। विकास यात्रा में एक स्वर और भी प्रचार में आया जो कि अनुदात्त की श्रेणी में ही सम्मिलित किया जाता है उसे 'प्रचय' कहा गया। इस तरह 4 स्वर के प्रमाण प्राप्त होते है।[3]

- दूसरा तत्व 'स्वर तत्व' अर्थात 'स्वराघात' अर्थात् किसी शब्द को ऊँचे नीचे pitch पर किस तरह modulation के साथ गाना है।

दरअसल बलाघात और स्वराघात दोनों तरह के स्वर, गान क्रिया में समान रूप से अपना अस्तित्व रखते हैं।

अर्थात् किसी भी मंत्र का उच्चारण करते समय उस विशिष्ट शब्द पर stress करने की क्रिया, तथा उसके pitch को ऊँचा नीचा कर modulation की क्रिया, को एक साथ समझ कर उसका उच्चारण किया जाता है।

विकासक्रम में हमें ज्ञात होता है कि सामगान में वीणा एवं वेणु का प्रयोग किया जाता था। इस काल में स्वरों को 'गांधर्व स्वरों' के रूप में जाना जाता था। जब साम स्वरों की तुलना गांधर्व स्वरों से की गई (जो आज हमारे शास्त्रीय संगीत के स्वर है) तब हमें स्पष्ट रूप से निम्नलिखित स्वर प्राप्त होते हैं।

साम स्वर	गांधर्व स्वर
1. प्रथम	मध्यम
2. द्वितीय	गंधार
3. तृतीय	रिषभ
4. चतुर्थ	षडज
5. मंद्र	धैवत
6. अतिस्वार	निषाद
7. कृष्ठ	पंचम

जिसके प्रमाण हमें 'भरत नाट्यशास्त्र' एवं नारद कृत 'नारदीय शिक्षा' में प्राप्त होते हैं।

इस तरह हमें समकक्ष रूप से निम्नलिखित सात स्वरों के विकसित स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है।

- उदात्त स्वरों से- नि एवं ग स्वर
- अनुदात्त स्वरों से- रे एवं ध स्वर
- स्वरित स्वरों से- सा म एवं प स्वर की उत्पत्ति के प्रमाण प्राप्त होते है।

साथ ही 'नारदीय शिक्षा' (700 ई.पू.) में विभिन्न स्तर पर स्वर की विशद व्याख्या मिलती है। जहाँ सात स्वरों का संबंध, स्वरों के देवता, मानव शरीर के विभिन्न अंगों, जाति, रंग एवं पशु आदि से स्थापित किया गया है। जो कि निम्नलिखित हैं।[4]

स्वर	उन स्वरों से तृप्त होने वाले देवता	मानव शरीर के विभिन्न अंगों से स्वर उत्पत्ति	स्वरों की जाति	स्वरों के रंग	स्वरों के पशु
षडज	देवता	कंठ से	ब्राह्मण	पदमपत्र के समान	मयूर
ऋषभ	ऋषि	सिर से	क्षत्रीय	पिंजर के समान	गाय
गंधार	पितृगण	अनुनासिका से	वैश्य	स्वर्ण सदृश्य पीतवर्णी	बकरी
मध्यम	गंधर्व	उर से	ब्राह्मण	कंद पुष्प के समान	क्रौंच
पंचम	देवता, पितृगण, ऋषि	उर, कंठ, सिर	ब्राह्मण	कृष्ण वर्ण	कोयल
धैवत	मनुष्य जाति	तालु से	क्षत्रीय	पीत वर्ण	घोड़े
निषाद	यक्षगण	सर्वसंधि से	वैश्य	रक्त, पीत, श्वेत वर्ण	हाथी

इस तरह मध्य काल में हुई विभिन्न शोधों के बाद 7 शुद्ध स्वर एवं 5 विकृत कुल 12 स्वर प्राप्त होते है।

- **7 शुद्ध स्वर – सा, रे, ग, म, प, ध, नि**
- **5 विकृत स्वर - रे, ग, ध, नि, मं**

संगीत की गान शैलियों की उत्पत्ति

वेदकाल –

प्राचीन परंपराओं में निहित भारतीय संगीत की उत्पत्ति सामवेद के वैदिक मंत्रों में मिलती है। जहाँ संगीत और भक्ति एक दूसरे से गुथे हुए हैं। वैदिक काल पर दृष्टिपात करने पर हमें सर्वप्रथम जो उक्ति प्राप्त होती है वह है-

'' **ऋचिअध्युणम् साम गीयते** ''

अर्थात् 'ऋचाओं पर आधारित गान ही सामगान है' सामवेद में ऋग्वेद की ऋचाओं को ही एकत्रित किया गया है। यहाँ यह जानना आवश्यक है, कि केवल सामवेद की ऋचाओं को सामगान नहीं कहा गया, वरन् जब ऋचाओं को गेय रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तब वह सामगान कहलाता है।

जैमिनी ने कहा है- 'गीतीषु सामाख्या' अर्थात् 'गीति को ही साम कहते हैं' ऋचाओं पर जो Melody गायी जाती है उसे **साम** कहते है। अर्थात् न सिर्फ ऋचा को ही साम कह सकते है और न ही सिर्फ गान को साम कह सकते हैं, बल्कि जिसका आधार ऋचा हो, और उस पर गान किया जाए, वह सामगान है।

छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है- 'का सामनो गति इति' अर्थात् साम की गति क्या है? और उसका उत्तर मिलता है- 'स्वर इति होवाच' अर्थात् जब मंत्र में विशिष्ट स्वर, मात्रा, लय तथा साहित्य का समावेश हो, तब वह सामगान की श्रेणी में सम्मिलित होता है।

वेदकाल में सिर्फ मौखिक परंपरा के द्वारा साम को प्रस्तावित किया जाता था परंतु वर्तमान में सामवेद के नाम से हमें दो तरह की संहिताएं मिलती हैं।[5]

1. आर्चिक संहिता 2.गान संहिता

आर्चिक संहिता के दो रूप हैं- 1) पूर्वार्चिक संहिता एवं 2) उत्तरार्चिक संहिता

पूर्वार्चिक संहिता में 1-1 ऋचा है, तथा उत्तरार्चिक संहिता में 3-4-5 ऋचाओं का समूह है, जिसे सूक्त कहते हैं। गान संहिता दरअसल पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक संहिता के आधार पर ही निर्मित हुई है। परंतु यहाँ ऋचाओं को उनकी स्वर लिपी के साथ दिया गया है। अर्थात् अध्ययन की दृष्टि से पूर्वार्चिक ऋचाओं का प्रयोग होता था, परंतु यज्ञों में उत्तरार्चिक ऋचाओं का प्रयोग किया जाता है।

साम की गान संहिता के अंतर्गत चार प्रकार के गायन प्रचलित हुए।

1) पूर्वार्चिक संहिता- (a) ग्राम गेय गान (b) आरण्यगेय गान

2) उत्तरार्चिक संहिता- (c) ऊह गान (d) ऊह्य गान

(a) ग्राम गेय गान - इन्हें प्रकृति गान भी कहते हैं, पूर्वार्चिक पर आधारित 585 ऋचाओं को 1108 से अधिक प्रकार से गाया जाता था। और सभी प्रकारों के नाम भी अलग अलग थे। इसी से कल्पना की जा सकती है कि हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा एवं गान परंपरा कितनी समृद्ध रही होगी।

(b) आरण्यगेय गान - आरण्य अर्थात लकड़ी। ऐसे गान जो वन में गाए जाते थे उन्हें आरण्यगेय गान कहा जाता है।

(c) ऊह गान - उत्तरार्चिक पर आधारित, सूक्तों पर गाए जाने वाले गायन जो यज्ञों में प्रयुक्त होता था, को ऊह गान कहते हैं। ऊह गान का अर्थ है कल्पना करना या ख़्याल करना। सूक्त की 3 पंक्तियों में से प्रथम पंक्ति का गान निबद्ध होता है लेकिन दो अन्य पंक्तियों का गायन ऋषि अपनी कल्पना अनुसार यज्ञ में प्रस्तुत करता था। संभवतः ख़्याल परम्परा का अंकुरण इसी गान से संबंधित हो सकता है। आज हमारे समक्ष कई प्रकार के गान प्रकार प्रचलित है ख्याल गायन, तराना, ध्रुपद। इन सब का आधार सामगान है।

(d) ऊह्य गान - ऊह्य का अर्थ है गूढ़ रहस्य, अर्थात् उपनिषद के गूढ़ रहस्य को समझने वाले गायक ही इस विधा का गायन किया करते थे। इनका प्रयोग भी यज्ञों में विशेष तरह से किया जाता था।

यहाँ यह बात महत्वपूर्ण एवं ध्यान देने योग्य है कि साम गायकों को दोनों तरह के स्वरों का ज्ञान होना अति आवश्यक है। क्योंकि ऋचा का उच्चारण उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों में होता है। और यज्ञ गान सप्त स्वरों में गाया जाता है, अर्थात कृष्ठ, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वार आदि। इस तरह सात स्वरों का प्रयोग करके, छह स्वरों का प्रयोग करके तथा पाँच स्वरों का प्रयोग करके सामगान किया जाता था। आज राग परम्परा में भी हम औडव, षाडव और संपूर्ण जाति के मेल से कई रागों की निर्मिति को देख सकते हैं।

प्राचीन काल-

वैदिक काल के पश्चात् हमें संगीत के प्रमाण 'भरत नाट्यशास्त्र' (400-600 ई.पू.) में मिलते हैं, जो कि सबसे वृहद एवं प्राचीन ग्रंथ है। जिसमें संगीत, नृत्य एवं नाट्य से संबंधित करीब सवा लाख श्लोकों को विभिन्न तथ्यों एवं सिद्धातों से श्रृंखलाबद्ध किया गया है। नाट्यशास्त्र जहाँ एक ओर संगीत के शास्त्र का पूर्ण सारग्रंथ है, वहीं दूसरी ओर संगीत के भाव पक्ष, रस पक्ष का भी विशद विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

भरत मुनि ने गांधर्व स्वरों के स्वरूप का विशद् वर्णन करते समय मूलभूत 2 सप्तक बताए। 7 स्वरों का समुदाय होने के कारण इन सप्तकों के लिए 'ग्राम' संज्ञा प्रयुक्त की गई। एवं प्रत्येक स्वर की श्रुति संख्या निश्चित करके प्रस्तुत की गयी।[6]

षडज ग्राम का स्वर सप्तक-	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	
	4	3	2	4	4	3	2	= 22 श्रुतियाँ
मध्यमग्राम का स्वर सप्तक-	म	प	ध	नि	सा	रे	ग	
	4	3	4	2	4	3	2	= 22 श्रुतियाँ

तात्कालीन प्रचलित इन दोनों ग्रामों में पंचम स्वर के बारे में थोड़ा अंतर था उसे ध्यान में रखकर भरत मुनि ने चतुःसारणा द्वारा श्रुति निदर्शन के प्रयोग से यह सिद्ध किया, कि षडज ग्राम में प्रयुक्त स्वर, उनके स्वर स्थान, उसमें प्रयुक्त श्रुतियाँ, स्वर संवाद आदि कितने प्राकृतिक एवं वैज्ञानिक है।

भरत काल में हमारे समक्ष **जाति गायन** का स्वरूप सामने आता है। भरत काल में गीति के साथ-साथ जाति गायन भी प्रचलित था। जिसका प्रयोग उस काल में नाटक प्रदर्शन में होता था। इसलिए इसको **नाट्य गीती** भी कहा जाता है।

ऐसा भी कहा जाता है कि समाज के स्तुतिगान से ही जातिगान की उत्पति हुई प्राचीन काल में लोग अपने अपने इष्ट देवताओं की पूजा या आराधना करने के लिए विभिन्न प्रकार से गायन करते थे। प्रतिदिन भिन्न-भिन्न समय पर, उस समय के कार्य के अनुकूल स्तुतियाँ गाई जाती थीं। ऐसा कहते हैं कि तत्कालीन समाज के इन्हीं स्तुति गीतों में से अठारह जातियों की निर्मिति हुई।[7] 'सामवेद' के समान 'जातिगान' भी बहुत पवित्र माना जाता था।

भरत मुनि ने जाति के 10 लक्षण[8] बताए हैं जिनमें से आठ लक्षण, जाति वैशिष्ट्य को स्थापित करते हैं। वे निम्न प्रकार है-

1. ग्रह- आरंभ का स्वर
2. अंश- राग जनक मुख्य स्वर
3. न्यास- समाप्ति का स्वर
4. अपन्यास- गीतखंड के अंत में आने वाला स्वर
5. तार गति- अंश स्वर से प्रयुक्त तार स्वर की मर्यादा
6. मंद गति- राग की चलन सीमा तक अंश, न्यास तथा अपन्यास स्वरों तक
7. अलपत्व- स्पर्श मात्र से प्रयुक्त किए जाने वाले स्वर
8. बहुत्व- अनेक बार प्रयुक्त होने वाले स्वर
9. षाडव- 6 स्वरों का स्वरूप
10. औडव- 5 स्वरों का स्वरूप

इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र में 7 शुद्ध एवं 11 संसर्ग विकृत, इस तरह 18 जातियों का वर्णन किया है। संगीत की परंपरा काल दर काल संशोधित होते-होते विभिन्न विचारों एवं तथ्यों को लेते हुए आगे बढ़ती चली गई, और इसी श्रृंखला में भरत मुनि ने जातियों के संबंध में **रस विधान** का वर्णन किया। जिसके अंतर्गत-

1. मध्यम और पंचम स्वरों का बाहुल्य रखने वाले गाने श्रृंगार और हास्य रस के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।
2. षडज और रिषभ स्वरों का बाहुल्य रखने वाले गान वीर, रौद्र तथा अद्भुत रस के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।

3. गांधार और निषाद स्वरों का बाहुल्य रखने वाले गान करुण रस के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।
4. धैवत स्वर का बाहुल्य रखने वाले गान वीभत्स एवं भयानक रस के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।

पाँचवी से सातवीं शताब्दी के मध्य रचित ग्रंथ 'वृहद्देशी' मतंग मुनि (600-800 ई.स.) की अनमोल कृति मानी जाती है। जिसने इस काल के संगीत को एक नया आयाम दिया, जैसा कि इस ग्रंथ के नाम से ही स्पष्ट होता है, वृहद्देशी- 'वृहद' अर्थात् सविस्तार, 'देशी' अर्थात प्रचलित संगीत। अतः जहाँ सविस्तार प्रचलित संगीत की व्याख्या की हो, वह वृहद्देशी है। मतंग ने **राग गायन** का स्वरूप 'वृहद्देशी' में सर्व प्रथम प्रतिपादित किया। वैसे नाट्यशास्त्र जैसे विशद ग्रंथ में राग के विकास के बीज अंतरनिहित थे। जिसका प्रस्फुटन धीरे धीरे हुआ, और मंतग के समय तक राग प्रणाली स्थापित हुई, और उसे एक नया पारिभाषिक शब्द मिला।

''राग मार्गस्य यदरूपं, यन्नोक्तं भरतादिभिः
निरुप्यते तदस्मभिलक्ष्य लक्षणसंयुक्त''[9]

अर्थात्- 'राग मार्ग के जिस रूप का कथन भरत ने नहीं किया, उस लक्ष्य-लक्षण से युक्त राग के रूप का निरूपण हम कर रहे हैं।'

इस प्रकार उन्होंने सात गीती प्रकार के अंर्तगत, राग लक्षणों की सविस्तार व्याख्या की। जिसमें शुद्धा, गौड़ी, भिन्ना, राग, साधारणी, भाषा एवं विभाषा गीति के अंतर्गत singing style के बारे में बताया।

क.	वर्तमान प्रचलित राग	लक्षण	गीति प्रकार
1.	कल्याण, बहार, काफी	सीधे रूप से किया गया स्वर	शुद्धा गीति के अंतर्गत
2.	मल्हार	गमक युक्त स्वर प्रयोग	गौड़ी गीति के अंतर्गत
3.	देसी, जयजयवंती	सूक्ष्म और वक्र प्रयोग का बाहुल्य	भिन्ना गीति के अंतर्गत
4.	अड़ाना, सोहिनी	स्वरों की द्रुत गति, तार व्याप्ति का प्रयोग	राग गीति के अंतर्गत
5.	केदार, आसावरी, शंकरा, बिहाग, पटदीप,मारू बिहाग व भूपाली	स्वरों का प्रयोग सरल, वक्र, गमक युक्त त्वरित गति, तीनों स्थानों में सब प्रकार से प्रयोग	साधारणी गीति के अंतर्गत
6.	मांड, सारंग	काकू का विशेष प्रयोग, मधुर एवं स्पष्ट रूप से ध्वनियाँ प्रयुक्त	भाषा गीति के अंतर्गत
7.	दरबारी	सुंदर कोमल व शांत, विभिन्न प्रकार की गमकों से सुसज्जित	विभाषा गीति के अंतर्गत

संगीत उत्पत्ति से संबंधित इस ग्रंथ का वैशिष्ट्य इस कारण भी है, कि इस ग्रंथ में विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित संगीत शैलियों पर सर्वप्रथम प्रकाश डाला गया है।

मध्य काल

हिन्दुस्तानी संगीत शैली के विकास में **पंडित शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर** (1247 ई.स.) का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जिस तरह प्राचीन कालीन ग्रंथों में नाट्यशास्त्र को विश्वकोष के समान वृहद ग्रंथ मानते हैं, इसी श्रृंखला में 'संगीत रत्नाकर' को मध्य काल का वृहद ग्रंथ माना जाता है।

इस काल से उत्तर भारतीय संगीत के क्रम विकास में मानो उत्क्रांति सी आ गई थी, जहाँ एक ओर पुरानी विधा की रुपगत विशेषताएँ हट रही थी, और नई विशेषताओं का उसमें प्रवेश हो रहा था, वहीं दूसरी ओर पुरानी विशेषताओं का विन्यास, नूतन ढंग से भी हो रहा था। मध्य युगीन ग्रंथकारों द्वारा कई संगीत

शैलियों का उद्‌भव, संगीत के शास्त्रीय पक्ष पर दिया गया दृष्टिकोण, संगीत कृतियों का क्रमशः विकास आदि तत्वों ने मानो संगीत क्षेत्र में एक गति सी पकड़ ली थी।

आपने राग उत्पत्ति में जातियों के साथ साथ गीतियों का भी महत्वपूर्ण स्थान माना है। पंडित शारंगदेव ने ग्राम रागों की विभिन्न प्रकृति के अनुसार, 5 प्रकार की गायन शैलीयाँ मान कर इन शैलियों को गीति की संज्ञा दी है।
'संगीतरत्नाकर' में जाति के सम्बन्ध में कहा गया है-

''ऋचो यजूंषि सामानि क्रियन्ते नान्यथा यथा
तथा सामसमुद्‌भूता जातयो वेद सम्मिता।'' [10]

अर्थात् जातियाँ ब्रह्य हत्या के पातक से भी मुक्ति दिलाने वाली है। जिस प्रकार ऋक, यजुस, साम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार साम से उद्‌भूत जातियों में भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।
शारंगदेव के समय तक रागों की संख्या अनगिनत हो गई। इनमें से कुछ राग प्राचीन जातियों से सम्बद्ध थे, तो कुछ स्थानीय शैलियों से प्रभावित थे, कुछ दोनों की विशेषताओं को लिये हुए थे। इस समय तक प्रबंध गायन प्रचार में था, जो कि रागों पर आधारित था। रत्नाकर के अनुसार- वर्ण, पद तथा लय से सम्मिलित गान क्रिया 'गीति' कहलाती है। पंडित शारंगदेव ने भरतोंक्त पाँच गीतियों के राग लक्षण के आधार पर ग्राम रागों का वर्णन किया है। तथा प्रचलित रागों को दस भागों में वर्गीकृत किया।

पं. शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर का राग वर्गीकरण [11]

1. ग्राम राग
   (गीतों पर आधारित)

षडज ग्राम से उत्पन्न	मध्यम ग्राम से उत्पन्न
(1) शुद्ध कैशिक मध्यम	(1) मध्यम ग्राम
(2) शुद्ध साधारित	(2) षाडव
(3) षडज ग्रामेय	(3) शुद्ध कैशिक

2. उपराग - 8 उपराग

3. राग - 20 राग (जाति से उत्पन्न)

4. भाषा - (1)मुख्य भाषा राग (2)स्वराख्या राग (3)देशजभाषा राग (4)संकीर्ण भाषा राग

5. विभाषा - 20 राग

6. अन्तरभाषा- 4 राग

7. रागांग - 8 रागांग राग

8. भाषांग - 11 भाषांग राग

9. क्रियांग - 12 क्रियांग राग

10. उपांग - 3 उपांग राग

इनमें से प्रथम तीन प्राचीन रागों से उत्पन्न हुए, दूसरे तीन संगीत की प्रादेशिक शैलियों से प्रभावित थे। शेष चार प्राचीन रागों तथा भाषाओं के अंगभूत टुकड़ों पर आधारित थे।

इस काल तक संपूर्ण भारत में एक ही संगीत व्याप्त था परंतु जब इस काल में उत्तर भारत पर मुगलों एवं पारसियों का आगमन हुआ तब उत्तर भारतीय जनजीवन पर बहुत गहरा असर हुआ। दक्षिणावर्ती राज्यों पर दीर्घकाल तक मुगलों के आक्रमण नहीं हुए, अतः वहाँ की संगीत परम्परा ने अपना अस्तित्व बनाए रखा। उत्तर भारत के प्रबंध गायकों का धार्मिक आश्रय छूट गया, मुगल शासकों ने कलाकारों को आश्रय अवश्य दिया, किन्तु उनका लंबे समय तक चलने वाला प्रबंध सुनने में उन्हे रस नहीं था। अतः कलाकारों को अपनी रचनाओं में बादशाहों का गुणगान, नायक-नायिका, श्रृंगार आदि विषय संगीत के केंद्र में रखने पड़े, और इस तरह **ख़्याल** एक प्रतिभा युक्त कलाकृति के रूप में अपनी शक्ल बनाने लगा। यही ख़्याल विद्या आज उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत के रूप में मान्य हो गई।

पं. विद्याधर व्यास के अनुसार[12] :- जब मुस्लिमों का भारत पर आक्रमण हुआ उस काल में अमीर खुसरो अपने साथ पर्शियन संगीत को भारत में लेकर आया था। भारत के संगीत को जानकर उसने महसूस किया कि यह संगीत वैज्ञानिक दृष्टि से एवं सौंदर्यात्मक दृष्टि से बहुत ही उच्च स्तर का है। तब अमीर खुसरो को भारतीय संगीत सीखने की तीव्र उत्कंठा हुई। तत्पश्चात् उन्होंने गोपाल नायक का संगीत सुनकर उसे ग्रहण करने की कोशिश की। तथा भारतीय संगीत में पर्शियन संगीत का मिश्रण कर, एक नए संगीत के रूप में उन्होंने प्रयोग प्रारंभ किया। अर्थात् उन्होंने पर्शियन संगीत की 'मकाम पद्धति' को लेकर भारतीय संगीत से मिश्रित करना प्रारंभ किया। 'मकाम संगीत' में 'स्वर की स्थिरता' एक महत्वपूर्ण विशेषता होती है। स्वर की इस विशेषता के साथ, उन्होंने दूसरे स्वरों को मिश्रित कर, उसमें भाव पैदा करने जैसे प्रयोग प्रारंभ किए। इस तरह अमीर ख़ुसरो ने 'मकाम पद्धित' द्वारा रागों के स्वरूप एवं श्रृंगारिक साहित्य को मिलाकर एक नई विधा को जन्म दिया,जिसका नाम पड़ा **'ख़्याल'**। जो कि उस समय का एक सुगम संगीत का प्रारूप माना जाता था। दरअसल ख़्याल गायन की उत्पत्ति संगीत की अमूर्त शक्ति को पहचानने के लिए बहुत उपयुक्त सिद्ध हुई।

इस काल तक ध्रुपद गायन प्रचार में था जोकि मूलतः पूर्ववर्ती 'प्रबंध' नामक विधा का रूपांतरण है, जोकि विशिष्ट अक्षर और ताल क्रिया से निबद्ध रहता था। वस्तुतः देवालय में पूजा अर्चना के लिए संस्कृत भाषा में इस विधा का अंकुरण एवं विकास हुआ था। तथा काल के प्रवाह में राजा महाराजाओं के दरबार में प्रविष्ट हुआ। आज भी यह विद्या 4 बानियों के रूप में अपना समृद्ध वर्चस्व बनाए हुए हैं।

इस काल तक ख़्याल के इस रूप को प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई थी। ध्रुपद ही दरबारों में सर्व प्रचिलत एवं सर्व प्रतिष्ठित रूप माना जाता था। ध्रुपद से ख्याल तक की यात्रा में एक दूसरा रोचक तथ्य भी सामने आता है। तानसेन की वंशज परम्परा में 'नियामत खाँ' जो की कुशल बीन वादक थे, जो की दिल्ली के राजा मोहम्मद शाहरंगीले के दरबार में नियुक्त थे। एक समय किसी कारणवश बादशाह, नियामत खाँ से ख़फ़ा हो गए, और उन्हें दरबार से निकाल दिया गया। जो कि अप्रतिष्ठा का विषय था। तब नियामत खाँ ने सोचा, कि ऐसा क्या करें जिससे बादशाह की मर्जी पुनः बहाल हो जाए और मैं दरबार में फिर से दाखिल हो सकूँ!

.... कुछ समय बाद उन्हें यह बात पता चली, कि कुछ स्त्रियाँ हैं, जो कि सोने से पूर्व बादशाह को कुछ श्रृंगारिक रचनाएँ सुना कर उनकी चित्तवृत्जि को प्रफुल्लित करती है। नियिमत खाँ उन स्त्रियों के पास पहुँचे, और उनसे आग्रह किया, कि मैं आपको रागों में निबद्ध ऐसी बंदिशें सिखाऊँ, जोकि राजा की प्रशंसा में कही गई हों, और आप यदि उन्हें राजा को सुनाए, तो इससे बादशाह बहुत प्रसन्न होंगे। यह बात उन गायिकओं ने सहर्ष स्वीकार कर ली। इस तरह नियामक खाँ ने उस समय की प्रचिलत गान प्रकार में बंदिशें निंबद्ध करना प्रारंभ किया। एवं ख्याल के चार अंग- स्थाई, अंतरा, संचारी, आभोग के स्थान पर उन्होंने उस बंदिश में स्थायी एवं अंतरा को स्थान दिया। जिसमें उन्होंने राग एवं उसके स्वरों को विशेष रूप से उजागर करने के लिए शब्दों की संख्या कम कर दी। इस तरह पूर्व भाग और उत्तर खंड के आधार पर स्थाई और अंतरा को दो दो आवर्तन की साहित्य रचना के साथ सृजन करना प्रारंभ किया।

जिसमें श्रृंगारिकता, स्त्री के मनोभावों की प्रकटता, बादशाहत की प्रशंसा आदि विषय शामिल थे। साथ ही प्रत्येक रचनाओं में बादशाह के नाम के साथ, नियामत खाँ ने अपना उपनाम 'सदारंग' भी शामिल किया। जैसे- मोहम्मदशाह सदा रंगीले......। इस तरह इन कविता को ख़्याल का रुप देकर नियामत खाँ ने महिलाओं को सिखाया। और राजा के समक्ष इन ख़्यालों को प्रस्तुत करने को कहा।

श्रृंगारिकता, भावदारी, रागों की प्रधानता, स्वयं की प्रशंसा आदि से लिप्त ख़यालों को जब बादशाह ने सुना, तो उन्हें वे रचनाएँ, बहुत अधिक पसंद आयी। तब राजा ने एक नए गीत प्रकार को सुनकर गायिकाओं से पूछा- कि ये गीत प्रकार आपने कहाँ से सीखा? तब उन गायिकाओं ने नियामत खाँ का नाम बादशाह को बताया। बादशाह इन ख़याल प्रकार से इतने प्रसन्न हुए, कि उन्होंने नियामत खाँ को पुनः अपने दरबार में स्थान दिया। इस तरह ख़याल का रूप स्थापित हुआ।
समय दर समय इस नवनिर्मित गान प्रकार ने उस काल में प्रचिलत संगीत प्रकार से विभिन्न तथ्य लेना प्रारंभ किया। जैसे ध्रुपद से राग आलाप, क़व्वाली से तान, बोल बाँट, लयकारी (क्योंकि उस समय में मुस्लिमों का संगीत था) इस तरह रचना के सौंदर्य को अलग अलग तरह से प्रदर्शित करने के लिए विभिन्न कलाकारों द्वारा विभिन्न रूप मिले। इस तरह इन ख़यालों की रचना में अंलकरण प्रारंभ हुआ। एवं बंदिश राग और ताल को मिश्रित कर गायक को अपनी सोच, अपनी कल्पना को प्रदर्शित करने की स्वतंत्रता मिली। मेरे विचारानुसार, यह 'ख़याल' उस समय का, 'फ्यूजन म्यूज़िक' ही कहा जाना चाहिए।

मध्य काल में जहाँ एक ओर विभिन्न संगीत शैलियों का उद्‌भव हुआ वहीं दूसरी ओर राग से जुड़े हुए शास्त्रीय पक्ष पर विभिन्न ग्रंथकारों ने विभिन्न सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया, जिसके अंतर्गत उन्होंने कई परंपरागत सिद्धांतों का अनुकरण करते हुए, नए सिद्धांतों के बारे में पहल की।

- पंडित पुण्डरीक विटठल (1557 -1605 ई.) ने अपने ग्रंथ में सर्वप्रथम मेल राग वर्गीकरण एवं राग चित्र की परिकल्पना का प्रादुर्भाव किया, जिसके अंतर्गत उन्होंने प्रत्येक रागों के चित्रों को अपने ग्रंथ में प्रस्तुत किया
  पं. पुंडरीक विटठल के संगीत ग्रंथ में वर्णित रागध्यान चित्र (Raag mala painting)

राग- ललित

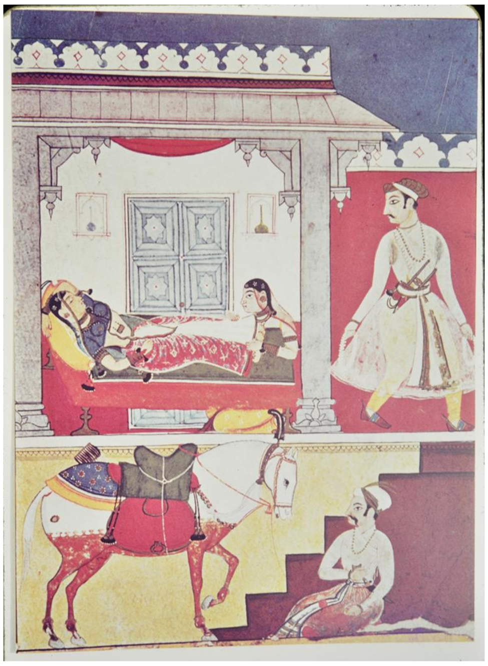

राग- मधुमाधवी

- श्रीकंठ (1575 ई.) ने 'रस कौमुदी' में राग के संगीत पक्ष का संबंध शरीर रचना के साथ स्थापित किया। शरीर में स्थित सात चक्र साथ स्वरों के सूचक है। एवं शरीर में असंख्य नाड़ियाँ असंख्य श्रुतियों की सूचक है।
- पंडित दामोदर (1625 ई.)ने 'संगीत दर्पण' में 'राग ध्यान' के आधार पर रागों के पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व रूप को स्पष्ट करते हुए राग रागिनी वर्गीकरण का विशद वर्णन प्रस्तुत किया। राग ध्यान के अंतर्गत उन्होंने हर एक राग की छवि के आधार पर, श्लोकों के माध्यम से उस राग की कल्पना को वर्णित किया है।

  पं. दामोदर के संगीत ग्रंथ में वर्णित राग–रागिनियों के ध्यान दृष्टव्य हैं–

  राग भैरव की रागध्यान –

  '' गंगााधरः शशिकला लिका स्त्र्रिनेतः
  स्र्पेविभूषित तनुर्गजकृति वासाः।
  भास्वत्रिशूलकर एष नृमुन्द्रकारी
  शुभ्राम्बरो जयति भैरव आदिरागः'' ।।

  (संगीत दर्पण,रागाध्याय)

  <u>भावार्थ</u> – जिसके मस्तक में से गंगा बहती है, कपाल पर चंद्रकला का तिलक है। जिसके तीन नेत्र है। जिसके शरीर पर सर्प शोभायमान है। जिसने अपने शरीर पर हस्ति चर्म धारण कर रखा है। जिसके हाथ में त्रिशूल भासित है, गले में मुंडमाल है जिसके वस्त्र श्वेत है। ऐसा आदि राग भैरव है।

- पंडित अहोबल कृत 'संगीत परिजात'(1650 ई.) का वैशिष्ट्य इस कारण मान्य हैं, उन्होंने सर्व प्रथम वीणा के तार पर गणितीय विधि के आधार पर शुद्ध एवं विकृत स्वरों की स्थापना के नियम का प्रतिपादन किया है।
- इसके अलावा इसी काल में पंडित हृदयनारायण देव कृत 'हृदयप्रकाश' (1660 ई.), पंडित सोमनाथ कृत 'राग विबोध' (1609 ई.), पंडित श्रीनिवास ' राग तत्व विबोध' (1660 ई.), पंडित लोचन कृत 'राग तरंगणी' (1675 ई.) जैसे कई ग्रंथकारों का अपना अमूल्य योगदान संगीत के शास्त्रीय पक्ष को बहुत समृद्ध करता है।

<u>आधुनिक काल</u>

मध्यकालीन ग्रंथों के पश्चात् जब हम उन्नीसवीं शताब्दी में हुए सांगीतिक परिवर्तन पर दृष्टि डालते हैं, तब यह युग हमारे समक्ष शास्त्रीय संगीत की क्रांतिकारी परिवर्तन के रूप में सामने आता है। गायन शैलियों के विकास क्रम की इस श्रृंखला में मध्य काल से आधुनिक काल तक शास्त्रीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकतानुसार उपशास्त्रीय विधा के कई प्रकार क्रमशः सम्मिलित होते चले गये। जैसे-टप्पा, ठुमरी, होरी, धमार, गजल, कव्वाली, दादरा, सादरा, खमसा, लावनी, चतरंग, सरगमगीत, रागमाला, लक्षण गीत, भजन गीत, कीर्तन, कजरी, चैती, बारहमासी, सावनी, मांड जैसी अनगिनत शैलियों का उद्भव हुआ। इसी के साथ पंडित विष्णु नारायण भातखंडे जी एवं पंडित विष्णु नारायण पुलस्कर जी के द्वारा संगीत विषय पर किया गया कार्य अत्यंत प्रशंसनीय है।

- आधुनिक ठाठ पद्धति का विकास
- संगीत के संवर्धन पक्ष पर किया गया कार्य
- घरानों का निर्माण एवं विकास
- संगीत के सैद्धांतिक पक्ष एवं क्रियात्मक पक्ष से सम्बंधित ग्रंथ निर्माण
- संगीत शिक्षण संस्थाओं का निर्माण
- स्वरलिपि पद्धति का निर्माण

- संगीत अधिवेशनों की परंपरा, आदि कार्य इस युग के क्रांतिकारी परिवर्तन के परिणाम है।

अब मैं निष्कर्ष रूप में उन बिंदुओं पर आप सभी का ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगी, जो सिद्धांत एवं तथ्य वर्तमान में प्रचलित होते हुए भी वैदिक कालीन सिद्धांतों एवं तथ्यों से कितने की गहराइयों से जुड़े है।

- वैदिक काल से ही मध्यम स्वर को प्रमुख अविनाशी अविलोपी कहा गया है, एवं उसका सा–म संवाद श्रेष्ठ संवाद के रूप में भरत काल से प्रयुक्त होता चला आया है। आज नव निर्मित एवं नव प्रचलित विधा '**जसरंगी**' गान विधा, जो कि पंडित जसराज के द्वारा स्थापित की गई। उसका आधार मूलतः सा–म संवाद एवं प्राचीन काल में प्रचलित मूर्छना पद्धति पर ही आधारित है।

- वैदिक काल में ऋषि मुनियों ने यह जान लिया था कि किसी भी साहित्य को यदि लंबे समय तक स्मृतिगत करना है, तो उस साहित्य में स्वर का समावेश कर, उसे बार बार उच्चारित करने से ही हम उसके सकारात्मक परिणाम पर पहुँच सकते हैं। वैदिक शिक्षा की मौखिक परंपरा में वेद ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक इसी पद्धति से पहुँचाया जाता था। आज सदियों बाद वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है। कि जिस साहित्य को हम संगीत के साथ सीखते हैं, वह साहित्य हमारी दीर्घकालिक स्मृति में लंबे समय तक संग्रहित हो जाते हैं। और यही कारण है कि विश्वभर में शालाओं में जब किसी भी बच्चे का अध्ययन शुरू किया जाता है तो हर एक विषय को गाकर याद कराया जाता है।

- वेदों को 'श्रुति' कहा गया, जहाँ मंत्र के 'अर्थ तत्व' एवं 'स्वर तत्व' को बारीकी से सुन कर उसकी शुद्धता को गुरूमुख से उसी तरह ग्राह्य किया जा सके। आज वर्तमान उत्तर भारतीय संगीत में स्वर की सबसे छोटी संज्ञा 'श्रुति' कहलाती है। दरअसल सूक्ष्मता से देखा जाए, तो शुद्ध या विक्रत स्वरों को तो उच्चारित किया जा सकता है, लेकिन जब उन्हीं स्वरों को, किसी राग में प्रयुक्त किया जाता है, तो उसे विशिष्ठ तरीके से राग में प्रयुक्त किया जाता है। अतः विशिष्ठ तरीके से राग में स्वर को प्रयुक्त किया जाना ही 'श्रुति' की समझ है। जिसे सिर्फ गुरूमुख से सुनकर या समझ कर ग्राह्य किया जा सकता है अर्थात श्रुति कि यह संज्ञा वैदिक काल से लेकर आज तक सामान संदर्भ में प्रयुक्त हो रही है। हाँ, यह जरूर कहा जा सकता है कि कई ग्रंथ कारों ने श्रुति संज्ञा को विभिन्न रूप से परिभाषित किया है।

- तीसरी एवं चौथी शताब्दी में नारदीय शिक्षा में स्वरों के पक्षी, जाति, क्षेत्र, रंग आदि के बारे में विस्तृत विवेचन किया गया है आज सदियों बाद संगीत चिकित्सा को रंग चिकित्सा के साथ सम्मिलित कर विश्व भर में चिकित्सकीय उपचार में इसका उपयोग किया जा रहा है। Synaesthesia – The Psychology of Colour इस पद्धति द्वारा मनोवैज्ञानिक व्याधियों के उपचार में इसका उपयोग किया जा रहा है।

- वैदिक युग में ऋचा गान कृष्ठ, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वार आदि सात स्वरों में होता था। एवं जो सामगान किया जाता था वह सात स्वरों, छः स्वरों और पाँच स्वरों में किया जाता था। सदियों बाद प्रस्थापित राग गायन परम्परा में भी इसी तत्व का अन्य संज्ञा के रूप में चलन, भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रस्थापित है। जहाँ 'संपूर्ण' अर्थात् 7 स्वर, 'षाडव' अर्थात् 6 स्वर, 'औडव' अर्थात 5 स्वर के सम्मिश्रण से राग निर्मिति को मान्यता प्राप्त है।

निष्कर्ष - आज, भारतीय शास्त्रीय संगीत निरंतर विकसित हो रहा है। अपनी समृद्ध विरासत से प्रेरणा लेते हुए समकालीन प्रभावों को अपना रहा है। रागों, तालों और संगीत रूपों ने बदलती सामाजिक–सांस्कृतिक गतिशीलता के अनुरूप खुद को ढाल लिया है, जिससे आधुनिक युग में उनकी प्रासंगिकता और जीवंतता सुनिश्चित हुई है, साथ ही वे परंपरा में गहराई से निहित हैं।

अतः इस शोध पत्र के द्वारा इस तथ्य को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान में संगीत का जो स्वरूप हमारे समक्ष विद्यमान है, उसकी जड़ें कितनी गहराई से वैदिक संगीत जुड़ी हुई है। हजारों वर्षों पहले विद्यमान् संगीत के कई तत्व, एक ओर आज भी उसी रूप में विद्यमान रहकर संगीत को समृद्ध बनाए हुए है,तो दूसरी ओर कई तत्व, अन्य संज्ञा के रूप में एवं व्यवहारिक उपयोगिता के रूप में अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। इस तरह यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि 'संगीत' विद्या कलात्मक रूप से कहीं अधिक, मानवीय आत्मा की गहन भाषा है, जो आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक पहचान में गहराई से निहित है।

....

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. पं. शारंग देव कृत 'संगीत रत्नाकर', अध्याय -1, श्लोक क्रमांक -24
2. व्याकरण शास्त्र के अनुसार
3. आलेख – सामगान, गांधर्व गान तथा रागगायन, डॉ. गणेश हरी तारलेकर, गान वर्धन, पृ.क्र.2
4. नारदीय शिक्षा, चतुर्थ कंडिका, स्वर वर्ण विभाग
5. अष्टछापीय भक्ति संगीत- उद्भव एवं विकास पृ.क्र 19
6. नाट्यशास्त्र, गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, पृ.क्र 145, भाग 4
7. डॉ. सुमति मुटाटकर, संगीत के चार चरण, लक्ष्य संगीत, दिसंबर 1956, पृ.क्र 56
8. नाट्यशास्त्र, भाग 4, अध्याय 28, पृ.क्र 43, श्लोक 66
9. श्री मतंग मुनि प्रणीता 'वृहद्देशी' भाग-2, कला मूल शास्त्र ग्रंथमाला,अध्याय 3, श्लोक 263
10. संगीत रत्नाकर, भाग 1, स्वर अध्याय, प्रकरण 7, पृ.क्र 273, श्लोक 114
11. संगीत रत्नाकर, भाग 1, पृ.क्र 75 से
12. डॉ. पंडित विद्याधर व्यास से साक्षात्कार पर आधारित

विशेष आभार

- 'साम स्वरों' के विषय पर डॉक्टर पंकज माला शर्मा के व्याख्यान पर आधारित
- भारतीय संगीत- परंपरा एवं परिवर्तन, डॉ शिखा समैया
- पं. भातखंडे के ग्रंथ
- स्वर सिंधू (शोध पत्रिका)
- संगीत गैलेक्सी (शोध पत्रिका)